Chap-5

पंचम अध्याय

शिवानी की

समकालीन उपन्यास लेखिकाएँ

उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया निरूपमा सोबती, राजी सेठ, मालती जोशी, मेहरून्निसा परवेज, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग।

शिवानी की समकालीन उपन्यास लेखिकाएँ

साठोत्तर महिला उपन्यासकारों का लेखन बहुत ही निर्भिकता के साथ आरम्भ हुआ।

बदला हुआ परिवेश था तो चिन्तन की दिशाएँ बदलना भी स्वाभाविक था, चिन्तन की दिशाएँ बदली और उपन्यास लेखिकाएँ भी विविध प्रश्नों को लेकर इस समस्याग्रस्त परिवेश में खड़ी दिखाई देने लगी, इनकी मुद्रा प्रश्नाकुल किन्तु निर्भीक थीं। इन्होंने नवलेखन को महत्व दिया।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की मूल प्रवृत्ति विद्रोही ही रही और ये विद्रोह उनके उपन्यासों में भी साफ दिखाई देता है।

साठोत्तरी नवलेखन के साथ नयी पीढ़ी को जिस युग में जीना पड़ा, वह चिन्ता, अलगाव, अकेलेपन और तनावों का युग था। पहले के युग की अपेक्षाकृत इस युग को ज्यादा संघर्ष झेलना पड़ा, यह संघर्ष अपने आप से ही है। दस वर्ष पूर्व की कहानी लेखिकाएँ ही उपन्यास लिख लिया करती थीं। जब उषा जी और मन्नू जी लिख रही थीं तब स्वचेतन बोध नहीं था कि महिला लेखिकाएँ कुछ कर रही हैं या कर पा रही हैं,

लेकिन पिछले एक दशक से हिन्दी का ऐसा लेखन आ रहा है जिससे नारी लेखिका की अस्मिता, उसकी दृष्टि स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ रही है।

साठोत्तर महिला लेखन के दौर में ऐसी लेखिकाओं का उदय हुआ जिनका कि अपने लेखन पर पूर्ण अधिकार था, जो वह सोचती थीं वह बिना फेरबदल के लिखतीं थीं चाहे वह 'सैक्स' का विषय ही क्यों न हो। साठोत्तरी महिला लेखन के दौर में लेखिकाओं ने स्त्री को लेकर नई चेतना के निर्माण की पहल की थी।

साठोत्तर महिला लेखन के दौर में कई महिला उपनयासकारों ने अपने सृजन से उपन्यास जगत को गौरवान्वित किया, ये सभी महिला उपन्यासकार शिवानी की समकालीन है जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

उषा प्रियंवदा -

हिन्दी की विख्यात लेखिका 'उषा प्रियंवदा' ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने तीन वर्ष तक दिल्ली के लेडी श्री राम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन के बाद स्कालरशिप पर अमरीका प्रस्थान किया। आजकल वे पिस्कासिन विश्वविद्यालय, डिसन में दक्षिणेशियाई विभाग में कार्यरत हैं। उषा जी ने बड़ी ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है। उनका लालन-पालन और शिक्षा तो भारत में हुई पर वर्तमान में वे पाश्चात्य जीवन जी रही हैं। उनके लेखन में बनावट कतई नहीं है, उनकी प्रत्येक रचना में विवेक दिखाई देता है। उनके कथा साहित्य में शहरी बड़े परिवारों के चित्र, आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलापन, ऊब आदि का वर्णन करने में गहरे यथार्थ का परिचय दिया है। इनकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं, 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', 'कहानी संग्रह', 'पचपन खम्बे लाल दीवारें', 'रूकोगी नही राधिका', 'शेष यात्रा' प्रसिद्ध उपन्यास है और अन्य अंग्रेजी पुस्तकें। ऊषा प्रियवंदा हिन्दी की कुछ इनी-गिनी महिला लेखिकाओं में आती हैं जो नारी चेतना का एक संतुलित दृष्टिकोण लेकर चली है। अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य में बहुश्रुत ऊषा जी सामाजिक तथा वैश्विक संदर्भ में नारी के

बदलते-बिगड़ते, बनते-सवरते रूपों से भली-भांति परिचित है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास में उन्होंने आधुनिक-शिक्षित नारी की शोषणोन्मुखी त्रासदी को सुचारू ढंग से सम्मिलित किया है। नारी का शोषण हर युग में हुआ है कभी 'धर्म' द्वारा कभी 'शास्त्रो' द्वारा कभी 'राजनीति' द्वारा कभी 'घर-परिवार' और 'समाज' द्वारा। आज की नारी जहाँ सुशिक्षित होकर आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुई है। वहाँ उसने इस आत्मनिर्भरता की कीमत को भी चुकाया है। अब उसके आर्थिक शोषण का आरम्भ हो गया है। अनेक परिवारों में परिवार की बड़ी लड़की इस प्रकार के शोषण का शिकार होती रहती है। जहाँ पूरे परिवार को पालने के लिए अविवाहित जीवन की विभीषिका को ढोने के लिए वह विवश हो जाती है। उषा जी के नारी पात्र भावुकता के स्थान पर विवेक का ही वरण करते है। इस उपन्यास में सुषमा के जीवन की जो त्रासदी है; उसके जीवन में संत्रास घुटन पीड़ा और अकेलेपन की यातना है, सामाजिक जीवन मूल्यों का जो बदलाव है, भौतिकता का जो आग्रह है, इन सबके पीछे नगरीय परिवेश ही मूलतः कारणभूत है।

उषा प्रियम्वदा सुषमा के मन की स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखती है-''कुछ स्मृतियाँ कुछ स्वप्न, कुछ अस्फुट शब्द, श्रमरत छात्र की तरह सुषमा बार-बार उन पृष्ठों को उलटकर दोहराती है। उन संवेगो की दहलीज पर खड़ी होकर अतीत में झाँकती है; मन की संकुल गलियों में भटका करती है-हर वाक्य, हर मुद्रा और प्रत्येक स्पर्श के अनेक संदेशो पर रूकती हुई; ठहरती हुई और उस समय इस संसार की सीमाएँ दूर-दूर हटती जाती है और वह अकेली रह जाती है-अपने में सम्पृक्त।''[1]

अपने दायित्वों; पद की गरिमा और परिवार की दीवारों में उसके जीवन के स्वप्निल वर्ष विलीन हो गए थे। परन्तु इनसे घिरे होने पर भी अवचेतन उसे हमेशा सालता रहा है। उसे प्रेमी नहीं चाहिये था। उसे पति की आकांक्षा भी न थी, पर कभी कभी न जाने क्यों उसका मन डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिये वह काँपने लगती है। तब चाह उठती कि दो बाँहे उसे भी सहारा देने को हों, उस नीरवता में कुछ

1- पचपन खम्भे लाल दीवारें- उषा प्रियम्वदा- पृ-5

अस्फुट शब्द उसे भी संबोधन करे।''[1]

'पचपन खम्बे लाल दीवारें' जहाँ मध्यमवर्गीय समाज से सम्बन्द्ध उपन्यास है; वहाँ 'रूकोगी नही राधिका?' उच्च वर्गीय सामाजिक चेतना को रूपायित करता है। इसमें लेखिका के अनुभव का दायरा भी कुछ विस्तृत हुआ सा जान परता है। भारतीय सभ्यता के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता भी इसमें दृष्टिगत होता है। यह उपन्यास आधुनिक जीवन के कई आयामों को उद्‌घाटित करता है। इस उपन्यास में उच्चवर्गीय जीवन की भावहीनता; बौद्धिकता तथा भौतिकता के परिणामस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों की टूटन को भलीभाँति रेखांकित किया गया है।

'रूकोगी नहीं राधिका' में राधिका की समस्या मनोवैज्ञानिक है। वह अपने पिता से बेहद लगाव के कारण न तो उनके दूसरे विवाह और विमाता को स्वीकार कर पाती है और न ही किसी युवक को पति के रूप में स्वीकार कर पाती है। उसकी बेहद परिष्कृत रूचि और मैनरिज्म की गंभीरता के बाह्य आवरण के भीतर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह 'इलेक्ट्रा-कॉम्पलेक्स' की शिकार है। वह प्रत्येक पुरूष को अपने पिता की छवि की कसौटी पर कसना चाहती है। किन्तु पिता के विवाह के बाद वह निर्मम हो जाती है और विमाता की आत्महत्या के बाद भी वह अपने पिता को छोड़कर चली जाती है।

इस प्रकार 'रूकोगी नही राधिका?' का परिवेश नगरांचल का उच्चवर्गीय परिवेश है। राधिका का व्यक्तित्व एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। वह संस्कारगत संकीर्णता में जकड़ी हुई युवती है उसकी इस संकीर्णता को डैन एक स्थान पर विश्लेषित करता है-

''माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव बहुत कुछ एबनोर्मल हो गया। यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारम्भ से ही युवा-मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा नहीं होता। तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया।''[2]

कृष्णा सोबती –

---

1. पचपन खम्भे लाल दीवारे - उषा प्रियम्वदा- पृ- 29
2. रूकोगी नही राधिका - उषा प्रियंवदा पृ-33

कृष्णा सोबती ने स्त्री को लेकर नयी चेतना निर्माण में पहल की है। हिन्दी कथा साहित्य में साहस का परिचय देने वाली लेखिकाओं में इनका नाम जाना माना है। इनका जन्म 18 फरवरी, 1925 में पंजाब में हुआ और शिक्षा दिल्ली, शिमला तथा लाहौर में। इन्होंने कविता से लिखना प्रारम्भ किया और बाद में इनकी लेखनी कथा साहित्य की ओर मुड़ गई। इनकी रचनाओं में पंजाब की माटी की सौंधी-सौंधी महक है। 1980 में इन्हें 'जिन्दगी नामा' उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सन्मानित किया गया और इसी उपन्यास के लिए 1981 में साहित्य शिरोमणि पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

इन्होंने अपने उपन्यासों में संस्कारभ्रष्टा; कामकुण्ठिता स्त्री को भी कला के माध्यम से दर्शाया ; परन्तु पाठक वर्ग इसे पचा नहीं सका उन्होंने इसे भद्दापन और कुरूपता की संज्ञा दे डाली और शुरू हुए आरोप-प्रत्यारोप।

कामभावना के चित्रण और प्रस्तुति मात्र को अश्लीलता या नग्नता से क्यों जोड़ा जाय?

कृष्णा सोबती के लेखन में जीवन के प्रत्येक पहलू का रेशा-रेशा खोलने की क्षमता विद्यमान है, ऐसी ही विलक्षण लेखिका की कृत्तियाँ है; 'डार से बिछुडी', 'मित्रों मरजानी', 'यारों के यार', सुरजमुखी अन्धेरे के', और 'जिन्दगीनामा'।

'यारों के यार' तथा 'मित्रो मरजानी' जैसी रचनाओं के द्वारा 'बोल्ड' कही जाने वाली शैली में लिखने वाली कृष्णा सोबती 'सूरजमुखी अंधेरे के' में एक नवीन शिल्प-शैली और कथ्य को लेकर आती है। परम्परागत नारी-मुद्रा के खिलाफ नारी-मन का स्वतंत्र; कुछ स्वच्छन्द आलेखन कृष्णा जी के लेखन की एक पहचान-सा बन गया है। कृष्णा जी ने नारी के जातीय-जीवन के अछूते पक्ष को लिया है। वह अछूता पक्ष है-नारी का बेहद ठण्डा होना - वुमन्स प्रिजिडिटी बहुत पहले पाण्डेय बेचन शर्मा के 'बुधुआ की बेटी' नामक उपन्यास में कुछ ऐसे ही विषय को उठाया था।

इस उपन्यास में नारी-मनोविज्ञान की एक गूढ़ समस्या को लेखिका ने अपने

उपन्यास का कथ्य बनाकर सचमुच ही साहस का परिचय दिया है।

कृष्णा सोबती ने 'सुरजमुखी अन्धेरे के' उपन्यास में बलात्कार की समस्या को मनोवैज्ञानिक आधार पर उठाया है। नायिका रति अपनी किशोरावस्था में ही जिस अनैतिक कृत्य की शिकार होती है; उसमें से वह युवा होने पर बड़ी कठिनाई से ही उबर पाती है।

जहाँ 'सूरजमुखी अँधेरे के' में स्त्री की फ्रिजिडिटी को कथ्य रूप में लिया गया है, वहाँ 'मित्रो मरजानी' उसके विलोम अर्थात् स्त्री विपुल वासना को चित्रित करने वाला उपन्यास है। यह उपन्यास पंजाब की मिट्टी की सही पहचान कराता है। अनेक समस्याओं के रहते हुए भी उसका भरा पूरा प्रसन्न पारिवारिक वातावरण तथा उस पारिवारिक जीवन की महक इस उपन्यास की एक अनन्य उपलब्धि है। उन्मत्त यौवना मित्रों अपने पति से संतुष्टित न पाकर पर पुरूषों के प्रति आकर्षित होती है। और बड़े निर्भीक रूप में अपने पति को खरी खोटी सुनाती रहती है किन्तु उपन्यास के अन्त में पर पुरूषों को उपेक्षित कर अपने पति के प्रति समर्पित होती है। कृष्णा सोबती ने युवा नारी मन की इस 'कामना' का बहुत 'बोल्ड' चित्रण किया है। वस्तुतः मित्रो का विद्रोह परम्परा के विरूद्ध है और उसका प्रत्यावर्तन अपनी अस्मिता का उद्घोष। इसी कारण उसका मुखरा रूप भी निश्छल बन गया है।

कृष्णाजी ने पंजाब के एक अछूते परिवेश का चित्रण करके, तदनुरूप भाषा प्रयोग के द्वारा, हिन्दी उपन्यास में एक ताजगी लाने का प्रयास किया है। मित्रों के स्वच्छन्द रूप का वर्णन है-

मित्रो अपनी वाचालता में छोटे-बड़ो का भी लिहाज नहीं पखती। एक स्थान पर वह अपनी सास को खरी-खोटी सुनाते हुए कहती है-''मेरा वश चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ पर अम्मा अपने लाड़ले बेटे का भी तो हाड़ तोड़ जुटाओ। निगोड़े मेरे पत्थर के बूत में भी कोई हरकत तो हो।''[1]

1- मित्रो मरजानी- शिवानी- पृ- 84

मन्नू भण्डारी –

HANSA MEHTA LIBRARY
M.S University of Baroda

श्रीमती मन्नू भण्डारी की जन्मतिथि 3 अप्रैल 1931 है। मन्नू का जन्म मध्य प्रदेश के भानपूरा नामक ग्राम में हुआ, उनके पिता का नाम श्री सुखसम्पतराय भण्डारी हैं उन्हीं के लेखन संस्कार मन्नू जी में आये। मन्नू जी अपने पिता की पाँचवीं व सबसे लाड़ली सन्तान है। मन्नू भण्डारी ने जिस मारवाड़ी परिवार में जन्म लिया वह राजस्थान का अत्यन्त रूढीवादी परिवार था, परन्तु श्री सुखसम्पत्तराय भण्डारी के आर्यसमाजी एवं समाज सुधारक होने के कारण उनकी सन्तानों को पर्याप्त स्वतंन्त्रता मिली।

वस्तुतः मन्नू जी की की प्रारम्भिक शिक्षा अजमेर के सावित्री स्कूल में हुई और कहा जाता है कि नवी; दसवीं कक्षा से ही उनमें नेतृत्व करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। इन्होंने 1949 में बी.ए की परिक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने बी.ए में हिन्दी विषय नहीं लिया था, परन्तु एम.ए में हिन्दी लेकर व्यक्तिगत छात्रा के रूप में परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रशंनीय अंक प्राप्त किए। एम.ए की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे कलकत्ता के एक विद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगीं। कलकत्ता निवास में ही उनका परिचय श्री राजेन्द्र यादव से हुआ; उस समय राजेन्द्र यादव जी को हिन्दी साहित्य जगत में पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी तथा मन्नू जी ने लेखन जगत में प्रवेश किया ही था। परिचय घनिष्ठता में बदला और सन् 1959 में दोनों का विवाह भी हो गया। वास्तव में मन्नू भण्डारी एक ऐसी लेखिका का नाम है, जो कि अपने दौर की महिला लेखिकाओं में आधुनिकता की विसंगतियों और अन्तर्मुखी स्थितियों को चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियों की 'थीम' कुछ भी हो वो पाठक के मानस को झकझोरने में सफल है। लेखिका के संवाद किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए सफल है। उनकी भाषा सदैव पात्रानुकूल होती है। लेखिका ने पात्रों के तर्क-वितर्कों को ही अभिव्यक्ति नहीं दी बल्कि वातावरण में दृश्यों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। इनकी भाषा शैली हमेशा सरस, सरल और प्रवाहपूर्ण होती है। लेखिका ने स्वयं भी कहा है कि जब मैं लिखती हूँ तो अपने पात्रों के मध्य ही जीती हूँ और एक अनोखा सम्बन्ध स्थापित कर लेती हूँ और मैं यह नहीं

जानती कि पात्रों के साथ खुद को एकाकार करने की वृत्ति लेखन में साधक है या बाधक, वह बनाती है या बिगाड़ती है, पर इस एकात्मकता का अनुभव मैंने किया और बड़ी गहराई से किया।

सामान्यतः हिन्दी उपन्यास कई शोध प्रबन्धों और आलोचनात्मक कृतियों में श्रीमती मन्नू भण्डारी का उल्लेख नहीं किया गया तथा उन्हे एक कहानीकार के रूप में ही सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई है। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो हिन्दी उपन्यास साहित्य में मन्नू भण्डारी का विशिष्ट स्थान है और अपने कई पूर्ववर्ती एवं समवर्ती उपन्यासकारों के कृतित्व की तुलना में परिमाण की दृष्टि से उन्होंने कम लिखकर भी हिन्दी उपन्यासकारों में अब अपना निजी एवं विशिष्ट स्थान बना लिया है।

मन्नू जी की कृतियाँ, 'एक इँच मुस्कान', 'आपका बंटी', 'महाभोज',(उपन्यास) 'बिना दीवारों के घर'(नाटक), 'अकेली', 'चश्मो', 'रानी माँ का चबूतरा', 'सजा', मैं हार गई'(श्रेष्ठ कहानियाँ) हैं।

आधुनिक हिन्दी लेखिकाओं में एक सिद्धहस्त हस्ताक्षर ऐसी मन्नू भण्डारी का स्वत्न्त्र रूप से लिखा गया 'आपका बन्टी' प्रथम उपन्यास है। स्वतंत्र इसिलिए कहा गया कि इसके पूर्व में सहलेखन की परम्परा में उनका एक उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' मिलता है जो उन्होंने अपने पति के सहलेखन में लिखा था।

'आपका बण्टी' लेखिका का प्रथम किन्तु महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास इस नकली आधुनिकता से युक्त आज की महानगरीय जिन्दगी के एक पहलू की तीखी वास्तविकता का सही बोध कराने वाला उपन्यास है जिसमें एक विशेष परिस्थिति में पड़े हुए बच्चे की मनःस्थिति का इतने विस्तृत फलक पर आकलन किया गया है।

आज के शिक्षित समाज में टूटते हुए वैवाहिक सम्बन्धों में पिसते हुए छोटे बच्चे की त्रासदी को गहन संवेदनशीलता के साथ उकेरा है। यह आधुनिक जीवन की एक जटिलता है जिसका समाधान इस भौतिकतावादी समाज के पास नहीं है।

खंडित दाम्पत्य के दंश को दिखाना-मात्र लेखिका का लक्ष्य नहीं है। इसके कारण

उनके बच्चों की जो दयनीय और परवश स्थिति होती है, लेखिका का उद्देश्य रेखांकित करना कहीं अधिक प्रतीतिकर लगता है। आधुनिकता बोध की जटिलता और अकेले होते चले जाने की त्रासद स्थिति का विश्लेषण 'आपका बंटी' में मन्नू भण्डारी ने किया है। इस उपन्यास के प्रत्येक पात्र का अपना जीवन संदर्भ है। वह उसे आधुनिकता के स्वीकार के कारण, इनकारता है और एक बेहतर भविष्य के लिए कृत्रिमता को ग्रहण करता है।

मन्नूजी में अपने समकालीन सत्य को बेपर्द करने का साहस है।

स्वयं मन्नूजी ने इस सम्बन्ध में कहा है-

''मैं दिखाना चाहती थी कि खंडित माता-पिता के बच्चे किन परिस्थितियों से गुजरते है।

सबका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। इस सारी परिस्थिति में बच्चों पर क्या प्रतिक्रिया होती है; यही दिखाना चाहती थी। मैंने ऐसे बच्चों को देखा है, तब बेचैन महसूस किया है। मैं उसी को पाठक तक पहुँचाना चाहती थी।''

लेखिका ने एक सामाजिक सत्य को ही व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त किया है। 'महाभोज' मन्नू भण्डारी का मिश्रित परिवेश से संपृक्त उपन्यास है. क्यों ति उससे जुड़े हुए अधिकांश पात्र नगरीय परिवेश के हैं। महाभोज का व्यंग सीधा और सपाट न होकर सुक्ष्म एवं नुकिला है। इस उपन्यास में चित्रित राजनितिक छटियापन हमारे वर्तमान की वास्तविकता है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि यह उपन्यास उस राजनिति को लेकर चला है जिसके वृत्त में हम घिरे हैं, जो हमारे आस-पास है, जिसमें हम सांस ले रहे है।

लेखिका ने इस उपन्यास में पत्रकारिता को भी बख्शा नहीं हे। 'महाभोज' राजनीतिक जीवन में व्याप्त दोगली नीति; भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, अमानवीकरण, तिकड़मबाजी, दल-बदलू नीति और उसके घिनौनेपन को लिए हुए हैं, जिसने आज के समस्त जीवन को भ्रष्ट और विषाक्त बना दिया है।

ममता कालिया –

ममता कालिया का जन्म 2 नवम्बर 1940 में हुआ। इनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'यो ही मर जायेंगे'थी यही से इनके लेखन ने गति पकड़ी। उनकी रचनाओं में रूढ़ियों, परम्पराओं व सामाजिक कट्टर नियमों के विरूद्ध शब्द मिल जायेंगे। इनकी समस्त रचनाओं में नारी को पुरूष के समान अधिकार दिलाने का सफल प्रयास है। उन्होंने नारी जीवन के पक्ष को सूक्ष्मता से परखा है। उनके उपन्यास 'प्रेम कहानी' और 'बेघर से यह स्पष्ट होता है।

ममता कालिया द्वारा प्रणीत 'नरक दर नरक' मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त नरक के अनेक स्तरों को व्याख्यायित करने वाला उपन्यास है। 'बेघर' ममता कालिया का एक ऐसा उपन्यास है जो हमारेसमाज में व्याप्त संकीर्णता और दकिमानूसी के विपरीत एवं विनाशक परिणामों को व्यंजित करता है। लेखिका ने मध्यमवर्गीय शिक्षित मानसिकता को, उसके अन्तर्विरोधों को और उसके रहते निरंतर चलते जीवन संघर्ष को रेखांकित किया है। यहाँ घर-परिवार के साथ महानगरीय जीवन की आपाधापी, कमरतोड़ महँगाई और उसके कारण टूटते : बिखरते घर-परिवार प्रभृति को भी लेखिका ने एक नया आयाम दिया है। इस उपन्यास में लेखिका ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि चहारदीवारों का नाम घर नहीं है, घर का मतलब है प्रेम, विश्वास, शान्ति, संतोष और ऊष्मा। दाम्पत्य जीवन की बुनियाद ही प्रेम और विश्वास पर रखी जाती है और जहां व्यक्ति प्रेम और विश्वास की इस धुरी को चूक जाता है, वहां उसका जीवन गड़बड़ाने लगता है। 'नरक-दर-नरक' ममता कालिया द्वारा लिखित आधुनिक परिप्रेक्ष्य का उपन्यास है जिसके परिप्रेक्ष्य में मध्यमवर्गीय जीवन के नाना प्रकार के नरकों को बिम्बायित किया गया है। इस उपन्यास में बेकारी, नौकरी की तलाश में दर-ब-दर का भटकना, जीवन-मुल्यों के प्रति समर्पित व्यक्ति का मौका परस्त समझौतावादियों के सम्मुख निरन्तर निरस्त होते जाना, कर्तव्य परायण लोगों को नौकरी से निकाल देना, व्यावसायिक जीवन की यांत्रिकता में व्यक्ति का घर-परिवार से दूर होते जाना, कामकाजी महिलाओं का दोहरे उत्तरदायित्व से टूटना, पुरूष की देहवादी दृष्टि के परिणाम जैसी

अनेक मध्यमवर्गीय समस्याओं को उकेरा गया है।

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ के विचार है-''कामकाजी पत्नी तत्काल समर्पण को व्यक्तित्व की चुनौती समझती है, अपने अस्तित्व को अर्थहीन समझती है, इस तरह पत्नी की सैक्स-सम्भोग के प्रति उदासिनता दाम्पत्य जीवन के समंजन को बर्बाद कर देते हैं।''[1]

नगरीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में मध्यमवर्गीय नारी को किन स्थितियों से गुजरना पड़ता है, उसका अच्छा दिग्दर्शन इस उपन्यास में हुआ है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जहाँ स्त्रियाँ दोहरे उत्तरदायित्वो से गुजरती है वहां क्लानी और थकान के कारण उनमें जातीय इच्छा क्रमशः कम होती जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास नगरीय जीवन के कई आयाम दर्शाता है।

निरूपमा सोबती –

30 अक्टूबर 1943 को जन्मी निरूपमा सोबती की पहली कहानी 'निरावरण' जुलाई 1968 में प्रकाशित हुई। इनके दो कहानी संग्रह 'खामोशी को पीते हुए' और 'आतंक बीज'। 'प्रत्याघात' इनका लघु उपन्यास है। अपनी पहचान की तलाश में परम्पराओं में घिरे पात्रों की मनःस्थिति और बैचैनी इनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।

उनके लेखन में नारी-विमर्श के नुकीले कोण उपलब्ध होते हैं। 'पतझड़ की आवाजे' उनका एक प्रमुख उपन्यास है। अपने उपन्यास 'बटंता हुआ आदमी' में निरूपमाजी ने आज के बंटते हुए; खण्ड-खण्ड होते हुए, विभाजित व्यक्तित्व एवं मानसिकता वाले निर्मुल्यित होते हुए जीवन की वेदना को अभिव्यक्ति दी है।

'प्रत्याघात' की रज्ज़ो एक ऐसी नारी चरित्र है; जो अस्तित्व की तलाश में अपनी अस्मिता की रक्षा में भटकती है। 'दहकन के पार' में आदमी-आदमी में भेद करने वाली प्रवृत्तियों की जड़ो को उखाडने का प्रयास किया है।

उनकी रचनाएँ साक्षात जीवन से प्रभावित रही हैं। वह जीवन जिसमें बहुआयामी

1- क्यों कि समय एक शब्द हैः डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, पृ-509

दबाव है, जिसका सुख-दुख सब झेल रहे हैं जो हमारे आस-पास है। स्वतन्त्रा के बाद का वह भारत जिसमें मूल्य बिखरेहैं और वह व्यक्ति अपने लिए किन्ही मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाया है। दो सभ्यताओं ने मिलकर एक दोगली सभ्यता को जन्म दिया है-बस यही सारे दबाव, बिखराव, मजबूर करते है, कुछ लिखने के लिए।

हिन्दी की आधुनिक सशक्त लेकिकाओं में निरूपमा सेवती जी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। नारी-शोषण, मध्यवर्गीय संघर्ष, निम्नवर्गीय जीवन की नारकीयता, उच्चवर्ग की उपभोक्ता-मनोवृत्ति और इन सबके बीच नारी-चेतना, नारी-अस्मिता और गौरव के लिए निरन्तर संघर्षशीलता उनके लेखन के नुकिले आयामों को व्यंजित करती है। 'पतझड़ की आवाजे' उनके इसी लेखकीय संघर्ष को खराद पर चढ़ाने वाला उपन्यास है।

इस उपन्यास में अनुभा आधुनिक नारी का, उसके स्वत्व औप स्वाभिमान का, उसके संघर्ष और जीवट का प्रतिनिधित्व करती है।

अपने दूसरे उपन्यास 'बटता हुआ आदमी' में निरूपमाजी ने आज के बंटते हुए ; खण्ड-खण्ड होते हुए, विभाजित व्यक्तित्व एव मानसिकता वाले निर्मूल्यित होते हुए जीवन की वेदना को अभिव्यक्ति दी है। इस उपन्यास की एक विशेषता उसका फिल्मी परिवेश भी है।

इस उपन्यास की सुनन्दा को पग-पग पर अपनी सुन्दरता तथा देह के चेक को भुलाना पड़ता है। ''देह को माध्यम बनाकर अर्थोपार्जन करना 'बंटता हुआ आदमी' की सुनन्दा की भी विवशता है। सुनन्दा का सारा परिवार माँ; भाई व बहनें उसके अपने है मात्र पिता अपने नहीं है। उसके पिता उसके बाल्यकाल में स्वर्ग सिधार गये थे। सुनन्दा की माँ ने अरने चार बच्चों के कल्याण व गरींबी से परित्राण पाने के लिए एक ही उपाय सोचा-पुनर्विवाह। किन्तु दुर्भाग्यवश पतिरूप में जिस पुरूष का वरण किया, उसने शराब व जुए में लिप्त होकर न केवल सम्पूर्ण परिवार को दरिद्रता के अथाह सागर में डुबोया, बल्कि बड़ी बच्ची सुनन्दा की तरूणाई को भी दाग दिया।''[1]

1- हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला- डॉ. रोहिणी अग्रवाल- पृ- 107-108

इस उपन्यास में लेखिका ने यह भी चित्रित किया है कि जिस दौर से हम गुजर रहे हैं उसमें व्यक्ति आकण्ठ भ्रष्टाचार में लिप्त है। पूरा समाज ही सड़गल गया है। चापलूसी और सिफारिश का बोलबाला है, जिसके अभाव में प्रतिभाशाली व परिश्रमी व्यक्ती को भी काम नहीं मिल रहा है।

'बंटता हुआ आदमी' सुनन्दा और शरद के व्यक्तित्व की चेतना के बंटने और बिखरने की कथा-व्यथा है। एक देह-विक्रय करती है, दूसरा अपनी प्रतिभा। एक शारीरिक व्यभिचार है तो दूसरा आत्मिक और मानसिक।

दीप्ति खण्डेलवाल –

दीप्ति खण्डेलवाल नई पीढ़ी की ऐसी सशक्त कथाकार हैं, जिनके उपन्यासों में नारी के समर्पिता होने के बिम्ब को तोड़ा गया है। ऐसा ही उपन्यास है 'वह तीसरा' इस उपन्यास के पात्र रंजिता और संदीप विशेष रूप से व्यक्तिगत स्तर पर जिन्दगी और परिवेश को उलीचते है। राधा और कृष्ण के उन्माद को खुद में समाने का प्रयत्न करते है; किन्तु रंजीता के समर्पण में त्याग है वह राधा न बन पायी। दोनों के बीच कोई नहीं 'वह तीसरा' अटका रहता है।

'वह तीसरा' अटका रहता है। 'वह तीसरा' भी तो कोई नहीं बस अहम अविश्वास, अस्वीकार, जड़ता के अलावा इन्हीं वृत्तियों में जकड़ रंजीता और संदीप निरंतर अपने आप से एक जंग छेड देते हैं, न तो जीत की तुरही बजती है और न हार का दिया बुझाता है। सबसे बड़ा सच यही सामने आता है कि वे एक दूसरे से तो प्रेम करते है; परन्तु इससे कही अधिक स्वयं अपने आप से।

हिन्दी की आधुनिक लेखिकाओं में बहुचर्चित दीप्ति खण्डेवाल का 'कोहरे' उपन्यास परिवर्तित जीवन-मूल्यों, आधुनिक जीवन की छद्म शैली तथा स्त्री-पुरूष सम्बन्धों पर खुलेपन से दृष्टिपात करने वाला उपन्यास है। 'कोहरा' आधुनिक जीवन का ही प्रतीक है। कोहरे में कुछ स्पष्ट नहीं दिखता सब गड्डमगड्ड हो जाता है। हमारा आधुनिक जीवन भी कोहरे के ही समान अस्पष्ट है। यौन-उन्मुक्तता या स्वच्छन्दता भी आधुनिक

नगरीय जीवन का एक कोण है। इस उपन्यास में लेखिका ने नारी की असहाय स्थिति का चित्रण किया है। पुरूष उसे केवल भोग की वस्तु समझता है। 'कोहरे' में लेखिका ने न केवल सिमी-सुनील के खण्डित दाम्पत्य को लिया है ; बल्कि अपने मम्मी-पापा के दाम्पत्य की दरारों को स्पष्टतः दिखाया है। यहाँ लेखिका ने यह निष्पादित करने का प्रयत्न किया है कि अनेक अनिश्चितताओं से पूर्व हमारा यह आधुनिक जीवन ही 'कोहरे' की मानिंद है।

दीप्ति खंडेलवाल का यह उपन्यास भी नारी-शोषण को रेखांकित करता है। नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और स्वाभिमान का चित्रण ही मानो दीप्ति जी को काम्य है।

'प्रिया' में नारियों की तीन अभिशप्त पीढ़ीयाँ मिलती है। नानी से नातिन तक की कथा।

'प्रिया' आधुनिक नारी की अस्मिता, उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को लेकर नारी-चेतना का मानो बिगुलबजाती है। पर यह भी एक त्रासदी ही है कि नारी का प्रतिकार हमेशा विवाह-प्रतिरोध से ही होता है। दीप्ति जी ने प्रिया के द्वारा एक मिसाल पेश की है कि आज की शिक्षित नारी अकेले भी जीवन बिता सकती है। प्रिया विवाह करने से इन्कार कर देती है। माँ,बाबा और चित्रा उसे बहुत समझाते है, पर वह चट्टान की तरह अडिग रहती है। वह अपनी माँ से कहती है-''माँ तुम या मैं हम केवल प्रश्नचिन्ह ही बन सकती है, बनती रही है, जिसका न कोई निश्चित उत्तर मिला है, न मिलेगा।''[1]

प्रिया के इस कथन में पुरूष वर्ग की कठोरता परिलक्षित होती है।

राजी सेठ –

इनका जन्म 4 अक्टूबर, 1935 में नौशहरा (उत्तर प्रदेश) में हुआ इनकी प्रथम प्रकाशित रचना (कहानी) 'समानान्तर चलते हुए प्रतीक' (1974 में) जब राजी सेठ ने गाम्भीर्य धारण करते हुए लिखना आरम्भ किया तब उनके लेखन में भाषा, भावों की प्रौढ़ता, मानसिक द्वन्द्व के बीच सन्तुलन ढूँढती दृष्टि दिखाई दी। इनका 'तत्सम '

1- प्रिया- दीप्ति खंडेलवाल- पृ- 151

उपन्यास दिसम्बर, 1986 में भुवाल का पुरस्कार से सम्मानित हुआ था। उन्होंनें अपना लेखन क्षेत्र गृह परिवार ही चुना। असामाजिक धरातल पर खड़े सम्बन्ध अपनी निहित विषमताओं के कारण भी अक्सर अपना उत्साह खो बैठते हैं। अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न धरातलों पर होती है, जिसे समय का गुजरना एकदम सफल बना देता है। पुरूष के लिए प्यार काक्षण महत्वपूर्ण है, जबकि स्त्री के लिए आंशिक्त तृप्ति । क्यों कि प्यार उसके लिए एक घर होता है; एक समाज एक बधाव। बच्चों से चहकता महकता एक आँगन; समय का हस्तक्षेप इस सारे समीकरण को उघाड़कर रख देता है। राजी सेठ की भाषा में बिम्बों और शब्दों के प्रयोग में अलग ही सजावट है 'सुबह एक दम खाली लटकी हुई', 'भिनकता खालीपन', 'अकेलापन' 'फट गये पल्लू की तरह पीछे लिथड़ता हुआ'।

उनकी मनोभावों का विश्लेषण सहज ही भाषा का आँचल पकड़े अपना आकार गढ़ता रहता है। भाषा और भावों का सन्तुलन ऐसा है कि कोई किसी पर भारी नहीं है।

राजी सेठ के लेखन में एक ताजगी मिलती है। उनके उपन्यास 'तत्सम' में हमें उच्च-मध्यवर्गीय जीवन का खुलापन, उसकी निर्द्वन्द्वता, आर्थिक पक्षों के प्रति उसकी निश्चिन्तता; व्यावसायिक व्यस्ता प्रभृति का चित्रण मिलता है।

लेखिका ने वसुधा की अन्तर्मुखी यात्रा को भारतीय मध्यवर्गीय समाज और परिवार की विधवा के प्रति भिन्न दृष्टियों की व्यावहारिक मांसल नींव भी दी है और तथाकथित प्रगतिशील दृष्टि की स्थूल बहिर्मुखता को भी उजागर किया है।

परम्परा के पूरे दायित्व को जानते हुए तत्सम की नायिका परम्परा और आधुनिकता का गंगा-जमनी मेल करने में समर्थ होती हैं।

मालती जोशी –

गीत, नाटक, रेखाचित्र, कहानी सभी कुछ लिखने वाली लेखिका है मालती जोशी। 'निष्कासन' मालती जोशी का लघु उपन्यास है। इन्हे विशेष सफलता कहानी विद्य में ही मिली और इन्होंनें लिखना बाल साहित्य में प्रारम्भ किया। इन्होने 'निर्वासन' नाम का लघु उपन्यास लिखा है, जिसमें मनुष्य की आशा, आकांक्षाओं एवं वृत्तियों का जीवन्त

प्रस्तुतीकरण किया गया है। इनके उपन्यासों में पुरूष और नारी की वृत्तियों का सूक्ष्म अह्ययन है-पुरूष अपने आप को अपने परिवेश से अलग कर जी सकता है या जीने का दम्भ; भरता है, इसके विपरीत नारी विभिन्न मानवीय रिश्तों; समाज, परिवार से जुड़कर उन्हीं का अंग बन जाती है, जब कभी उन रिश्तों की चिन्दियाँ उड़ने लगती हैं तो वह उन चिन्दयों को समेट फिर से जोड़ने का प्रयास करती है, कभी नहीं भी जोड़ पाती तो खुद चिन्दियों की तरह बिखर जाती हैं। उनके लगभग सभी उपन्यासों में जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार हुआ है, सहज संवेदनशील भाषा पर तो जैसे उनका अधिकार है। इनके लिखे उपन्यास तो स्त्री के लिए जीवन संचार जैसे हैं। मालती जोशी कृत 'सहचारिणी' उपन्यास भी पुरूष-सताक समाज में पुरूष नारी के साथ कितनी निर्ममता; क्रूरता तथा अमानवीयता से व्यवहार करता है उसे रूपायित किया गया है।

योगेश जब नीलम को घर से निकाल देता है तब वह कहती है - ''क्या कोई शौक से पति का घर छोड़ देता है? माना कि वही घर स्त्री का स्वर्ग है, लेकिन उसके लिए कोई आत्मसम्मान तो दाँव पर नहीं लगा देता और पति जब स्वयं कहे कि वह ऊब गया है, मुक्ति चाहता है, तब भी क्या देहरी पकड़ कर बैठना श्रेयस्कर है?''[1]

मेहरून्निसा परवेज -

मेहरून्निसा परवेज का नाम छठे सातवें दशक की चर्चित लेखिका के रूप में लिया जाता है। इनके लेखन में निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग ही स्थान पा सके है, आंचलिक परिवेश इनके लेखन के सौन्दर्य को द्विगुणित करता है, जीवन के यथार्थ से नजदीकी रिश्ता बनाकर इनकी लेखनी ने पाँव आगे बढ़ाये है। भरकस गरीबी और लँगडाती हुई जिन्दगी से जूझते हुए लोगों की मानसिक यन्त्रणा को पकड़ने का प्रयास इन्होंने किया है यहीं आकर यथार्थ की सार्थकता से जुड़ जाती है। वे कभी भी खुद को पात्रों से पृथक् नहीं रखती वे पात्रों का दर्द सहती है; उनकी पीड़ा स्वयं की जो चुभन है, उसे भोगने में बराबर की हिस्सेदारी रखती हैं, वे पात्र हममें से ही चुनती हैं, उनके पात्रों के साथ

1- सहचारिणी - मालती जोशी - पृ- 19

घटी घटनाएँ या पीड़ा हमारी ही होती है और हमारी पीड़ा स्वयं लेखिका की। कहीं कोई भेद नहीं रहता, सब कुछ एक ही हो जाता है।

उन्हें कहानियों और उपन्यासों के कथनक के लिए कभी भटकना नहीं पड़ा। जीवन की इस लम्बी यात्रा में जाने कितने चेहरे मिलते हैं जो शायद याद रह जाते है और याद रखना मुश्किल व तकलीफ देह होता हैं।

'उसका घर', 'आँखों की दहलीज' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। 'मेहरून्निसा परवेज' के उपन्यासों में मुस्लिम-समाज का नगरीय परिवेश, उनके द्वन्द्व, उनके अन्तर्विरोध, विश्वास-अविश्वास, प्रगतिशीलता तथा दकियानूसी का आपसी संघर्ष, आधुनिक-शिक्षा से अनुप्राणित नारी-चेतना का पुराने मूल्यों से संघर्ष और उसमें से बाहर आने की जद्दोजहद जैसी प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक भी हैं और स्वागत-योग्य भी। '

'आँखों की दहलीज' में लेखिका ने 'आँखों की दहलीज' के चूक जाने या लांघ जाने के दुष्परिणामों को रेखांकित किया है। उपन्यास की कथा उच्च मध्यमवर्गीय मुस्लिम-परिवेश को उजागर करती है। यह एक रोमानी भावुकता का उपन्यास है। तालिया जो इस उपन्यास की नायिका है कि भावुकता कुछ ओढ़ी हुई, आरोपित और उलझी हुई-सी है। कदाचित् लेखिका भी इसी भावुकता की शिकार है।

लेखकीय-चिंतन के रूप में धार्मिक कठमुल्लापन; उर्स, मजारों पर चादर चढ़ाना, फूल-शिरनी वगैरह चढ़ाना, इत्यादि को लेकर लेखिका ने कुछ तल्ख टिप्पणियाँ भी की हैं।

जहाँ 'आँखों की दल्लीज' में मुस्लिम-समाज की कुछ विसंगतियों को रेखांकित किया गया है, वहाँ 'उसका घर' में ईसाई-समाज की ऐसी ही कुछ विसंगतियों को उकरने का लेखिका का उपक्रम है।

इस उपन्यास में एलमा का भाई स्वयं अपनी बहन के जिस्म का सौदा आहुजा नामक व्यावसायिक से करता है।

एलमा का चरित्र आत्मपीड़क है। वह अपने घर-परिवार के लिए अपने सर्वस्व की

आहुति देती है।

इस उपन्यास में लेखिका यह प्रस्थापित करना चाहती है कि कहीं कुछ नहीं बदला है। पहले राजा, नवाब और सामन्त-सरदार नारी का नैतिक शोषण करते थे, अब इस वणिक्-युग में ये सेठ, व्यापारी और उद्योगपति अपने पैसों के जोर पर ये जुल्म ढ़ाते हैं।

शशिप्रभा शास्त्री –

समकालीन उपन्यास के क्षेत्र में शशिप्रभा शास्त्री एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इन्होने 1956 से लेखन आरम्भ किया जब वे विवाहित थीं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विश्लेषण करना ही इनके कथा साहित्य का प्रमुख विषय है।

उनके मुख्य उपन्यास है 'परसों के बाद', 'उम्र एक गलियारे की', 'अमलतास', 'नावें', 'सिढ़ियाँ', 'परछाइयों के पीछे', 'कर्क रेखा'। लेखिका के 'अमलतास', की पात्र कामदा की सृष्टि अपने आप में एक सार्थक और प्रशंसनीय कार्य है।

शशिप्रभा जी एक आधुनिक नारी चेतना सम्पन्न लेखिका हैं। उनकी यह नारी चेतना पश्चिमी आन्दोलनों से उद्वेलित एवं परिचालित न होकर उनकी अपनी विवेक चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उनके उपन्यासों में हमें एक संतुलित दृष्टिकोण मिलता है। समाज के दो पाटों के बीच पीसते-जूझते मध्यवर्गीय समाज में नारी की जो स्थिति है, उसे लेखिका ने भलि-भांति उकेरा है।

उपन्यास की नायिका मालती और विजयेश ही ये 'नावें' है और इसे स्थिति की विडम्बना ही कहना चाहिए कि दूसरों की स्वार्थ-पूर्ति हेतू नाव बनने वाली मालती स्वयं अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए विजयेश को नाव रूप में इस्तेमाल करती है।

इस उपन्यास से यह प्रमाणित होता है कि कुंठित-जीवन-प्रणाली कभी भी स्वस्थ जीवन का निर्माण नहीं कर सकती है। प्रतिक्रियायित-जीवन-दृष्टि कभी स्वस्थ नहीं हो सकती। मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों के अध्येताओं के लिए यह उपन्यास सविशेष पठनीय है। लेखिका शशिप्रभा शास्त्री का नारी विषयक दृष्टिकोण बड़ा ही संतुलित है। वह तथा

कथित पश्चिम की नारी मुक्ति आन्दोलन की स्त्री नेताओं की भांति पुरूष मात्र को लिया है, वहां दूसरी तरफ उसकी विदृशता में विजयेश के चरित्र को आमने-सामने रखकर वह मानों यह कहना चाहती है कि सभी पुरूष नारी के दुश्मन नहीं होते, स्त्री पुरूष में मानवीयता का, दोस्ती का रिश्ता भी हो सकता है।

शशि प्रभा के उपन्यास 'सीढ़ियाँ' में परिवेश व स्थितियाँ भिन्न प्रकार की हैं। यहाँ कोई आर्थिक दबाव व विवशताएँ नहीं है, बल्कि उन्मुक्तता है। इस उपन्यास की विषय-वस्तु तथा परिवेश हिन्दी के अन्य उपन्यासों की तुलना में थोड़ा भिन्न और अलग हटता हुआ है। आधुनिक परिवेश तथा चिंतन इस उपन्यास का एक अन्य पहलू है। स्त्री-पुरूष सम्बन्ध, परम्परागतता का विरोध, वैवाहिक सम्बन्धों में समान धरातल की बात जैसे कई महत्वपूर्ण मुद्दे यहाँ उभरते है। उपन्यास की नायिका मनीषी का गहराता अकेलेपन का अंधकार हमारी संवेदना को कहीं झकझोर जाता है।

अन्त में तो पत्नी मनीषी को अत्यन्त अपमानित होना पड़ता है जब सुकेतु की उसे आधा मकान खाली करके उसे किराए पर देने के लिए कहती है। इतना ही नही वह मनीषी से शादी के खर्च का भी ब्यौरा माँगती है।

''न न यह कैसे होगा माशी; यह सारा हिसाब-किताब तो आपको देना ही पड़ेगा।''[1]

मंजुल भगत –

अपनी रचनाओं द्वारा अपना नाम स्थापित करने वाली लेखिका मंजुलभगत का जन्म 22 जून, 1926 में मेरठ में हुआ। इन्होंने अपना लेखन 1970 से प्रारम्भ कर शीघ्र ही नई पीढ़ी की चर्चित कथाकार बनीं।

स्वतन्त्र विचार ही उनकी रचनाओं की धरोहर है। लेखिका की संवेदना निम्नतर वर्ग से लेकर उच्चतर वर्ग के दर्द से जाकर जुड़ जाती है। उन्हें किसी वर्ग विशेष से जुड़ने की बजाय संवेदना से जुड़ने का आग्रह उभारता दिखाई देता है। इनकी रचनाओं में दर्द,

---

सीढ़ियाँ- शशि प्रभा शास्त्री- पृ- 321

पीड़ा की कसक बराबर महसूस की जा सकती है। वे अपनी रचना 'अनारो' के लिए उत्तर प्रदेश संस्थान तथा यशपाल प्रतिष्ठान द्वारा सम्मानित भी हुई।

उनकी अन्य प्रकाशित रचनाओं में 'खातुल', 'तिरछी बौछार', 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष', 'अनारो' (उपन्यास), 'गुलमोहर के गुच्छे', 'कितना छोटा सफर', 'आत्महत्या से पहले', 'बावन पत्ते और एक जोकर' (कहानी संग्रह), राजशिक्षा विभाग के लिए सम्पादित कहानी संग्रह, 'अपना-अपना दामन' आदि है। 'अनारो' मंजुल भगत की एक सशक्त चरित्र-प्रधान औपन्यासिक कृति है। इसमें लेखिका ने देश की राजधानी दिल्ली में जो झुग्गी-झोपड़ियाँ है, उनमें रहने वालों के गर्हणीय जीवन का चित्रण किया है। 'अनारो' मंजुल भगत का एक सशक्त नारी चरित्र प्रधान उपन्यास है। लेखिका ने हमारे शहर के निम्न स्तर के लोगों में व्याप्त विषमताओं, परम्परागत रूढ़ियों, समाज की मिथ्या मान्यताओं आदि पर प्रकाश डाला है। 'अनारो' अपने पति के अत्याचार, दुर्भाग्य और गन्दे वातावरण से लड़ती हुई अन्त तक जूझती है। अनारों एक दुःखी और असहाय नारी है, पर उसका स्वाभिमान मरा नही है। परिस्थिति की हीनता या विवशता उसके चरित्र पर कोई आँच नहीं आने देती।

'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' मंजुल भगत का एक 47 पृष्ठीय लघु उपन्यास है। इसकी नायिका शोभना की प्रेम-विषयक थ्योरी है कि जिससे प्रेम हो, उससे विवाह हो जाय तो जीवन बहुत सरल, अतः बोरियतपूर्ण हो जाता है, परन्तु प्रेम किसी से और विवाह किसी से 'वाली थ्योरी से जीवन में संघर्ष के क्षण बने रहते हैं। 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' लेखिका का उच्चवर्ग और उच्च-मध्यवर्ग के जीवन परिवेश को चित्रित करने वाला उपन्यास है।

मृदुला गर्ग –

25 अक्टुबर, 1938 में कलकत्ता में जन्मी मृदुला गर्ग साठ के दशक की महिला उपन्यासकारों में अपना स्थान रखती हैं। 1970 से निरन्तर लेखन कार्य में प्रवृत्त है।

'प्रेम पर बेबाक लिखने की सामर्थ्य मृदुला गर्ग में है, उनकी संवेदना को अभिव्यक्त करने की शैली से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। 'चितकोवरा' उपन्यास और

'कितनी कैदे' कहानी से कथा-साहित्य के संसार में मृदुला गर्ग की छवि यौन सम्बन्धों पर साहसिकता से लिखने वाली यौन रचनाकार के रूप में स्थापित हो गई। उनकी रचनाएँ है, 'चितकोबरा', 'कितनी कैदे', 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'अनित्य', 'मैं और मैं' तथा कहानी संकलन, 'कितनी कैदे', टुकड़ा-टुकड़ा आदमी; 'डैफाडिल जल रहे हैं' और 'एक और अजनबी', 'तुम लौट जाओ' (नाटक), 'ए टच ऑफ सत' (अंग्रेजी उपन्यास) मृदुलाजी की नायिकाएँ यौन-मुक्ति या स्वेच्छाचार की पक्षधर रही हैं। नारी पात्र मानसिक उहापोह से ग्रस्त है।

'उसके हिस्से की धूप' में यौन-संबंधों से उत्पन्न द्वन्द्वों को निरूपित किया गया है। इस उपन्यास में यह बताने की चेष्टा की है कि वर्तमान-जीवन की यांत्रिकता तथा आप धापी ने मनुष्य को जड़ और नीरस बना दिया है और यह नीरसता दाम्पत्य-जीवन को खोखला कर रही है। 'चित्तकोबरा' मृदुला गर्ग का यह उपन्यास अनेक तबकों में बहुचर्चित रहा है। इसमें प्रेम, विवाह, सैक्स प्रभृति पर एक आधुनिक दृष्टिपात किया गया है। उपन्यास चेतना-प्रवाह शैली में लिखा गया है। उपन्यास की 'थीम' प्रेम और सम्भोग तथा उसकी परितृप्ति से जुड़ी हुई है। मृदुलाजी के उपन्यासों में यह प्रायः दिखाई पडता है कि उनकी अधिकांश नायिकाऐं अनुपलब्ध के प्रति आकांक्षा और उपलब्ध के प्रति निरर्थकता के भावात्मक तनाव में निरन्तर कसमसाती रहती है। इस उपन्यास में जीवन के इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि तन और मन की सम्पूर्ण परितृप्ति कभी भी किसी एक से नहीं होती। जहाँ प्रेम-विवाह होते हैं, वहाँ विवाह पूर्व की स्थिति और विवाह के बाद की स्थिति में एक बड़ा अन्तर पाया जाता है। सपनों की झिलमिलाहट वास्तविकता के खुरदरेपन को झेल नहीं पाती। विवाह के पूर्व प्रेमिका प्राप्त होते हुए भी भारतीय मर्यादाओं तथा आदर्शो के कारण कुछ-कुछ अप्राप्य वाली कोटि में होती है। विवाह के बाद जब वह पूर्णतया प्राप्त हो जाती है तब वह स्वप्निल आकर्षण कमतर होने लगता है।

मनु महेश से अधिक रिचर्ड को चाहती है, शरीर की उपेक्षा वह कतई नहीं करती-

''शरीर ही संगीत है, शरीर ही नृत्य, शरीर ही ईश्वर है, शरीर ही आराधना, शरीर ही चेतना है, शरीर ही विस्फोट। पर शरीर लाल ची नहीं। अपना प्राप्य पा लेने पर वह शांत हो जाता है।''[1]

'चित्तकोबरा' मृदुलाजी की भी अनुभव-यात्रा है। इस उपन्यास में लेखिका ने 'सेक्स' का खुला वर्णन किया है। 'वंशज' लेखिका मृदुलागर्ग का उक्त दो उपन्यासों से कुछ अलग हटकर नयी जमीन तोड़ने का प्रयास है।

इसमें कानपुर के एक अंग्रेजों के जमाने के पूरी अंग्रेजीयत से भरे हुए शुक्लाजी नामक जज को लेकर कहानी के तानेःबाने बुने गए हैं। परन्तु उसका समयगत परिदृश्य पराधीनता काल से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति; गाँधी जी की हत्या तथा उसके बाद की अनेक घटनाओं को समेटे हुए हैं। मृदुला जी का यह उपन्यास परिवेशगत व्यापकता लिए हुए है तथा उसमें कुछ; राजनितिक ओर मनोवैज्ञनिक पहलुओं को स्पर्श किया है। 'अनित्य में और विकासित परिदृश्य के साथ लेखिका समुपस्थित हुई है और अपने सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों को और भी स्पष्ट करती हैं।

मृदुलाजी की इस कृति में सामाजिक सरोकारों, समाज; सापेक्षताओं तथा उक्त कलागत मुल्यों को दर्शाया गया है। इसमें उन्होंने गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन और भगतसिंह के क्रान्तिकारी आन्दोलन को आमने-सामने रखकर विगत पचास वर्षो की राजनितिक विसंगतियों को कलात्मक ढेग से उकेरा है। इसमें उन कारणों का विश्लेषण है कि हमारा स्वराज्य कैसे लक्ष्यच्यूत हो गया है। और प्रतिफलतः हमारा साम्प्रतिक समाज व व्यवस्था किस रूग्णावस्था को प्राप्त हो चुके हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति का लक्ष्य हम चूक गये है और कल के स्वतंत्र-सेनानी तथा त्यागवीर आज सुविधा-परस्तों की जमात में बैठ यथा-स्थितिवाद को पोषित करने में जुट गए हैं। गाँधी नेहरुवाद को बेपर्द करने का कार्य 'अनित्य' में किया गया है।

सदर्भ सुची

1. पचपन खम्भे लाल दिवारें-उषा प्रियम्वदा. पृ. 5
2. वही - वही पृ. 29
3. रुकोगी नही राधिका - उषा प्रियवंदा. पृ. 33
4. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती. पृ. 84
5. संचेतना, द्वारा आयोजित गोष्टी, संचेतना, समकालीन उपन्यास अंक दिसम्बर, 1991. मन्नू भण्डारी. पृ. 63
6. क्यों कि समय एक शब्द है : डॉ. रमेश कुन्तल मेघ. पृ. 509
7. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला - डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ. 107-108
8. प्रिया - दीप्ति खंड़ेलवाल. पृ. 151
9. सहचारिणी - मालती जोशी. पृ. 19
10. सीढ़ियाँ - शशि प्रभा शास्त्री. पृ. 321
11. चित्तकोबरा - मृदुला गर्ग. पृ. 110